1966-67 की आर्थिक समीक्षा

1-सारांश और मूल्यांकन

देश की आर्थिक स्थिति पर 1966-67 में, अर्थात् लगातार दूसरे वर्ष भी पहले के वर्ष की तरह, भयंकर सूखे का प्रभाव पड़ा। यद्यपि 1965-66 की अपेक्षा खेती की पैदावार में कुछ वृद्धि हुई, पर 1964-65 के सर्वोच्च स्तर के मुकाबले वह काफी कम रही। अन्न के आयात में काफी वृद्धि करनी पड़ी और यह जरूरी हो गया कि अन्न की वसूली और वितरण सम्बन्धी नियंत्रणों को कड़ा किया जाय और इस बात की व्यवस्था की जाय कि सूखे से सबसे अधिक पीड़ित क्षेत्रों के लोगों के लिए विशेष उपाय किये जायं जिससे उन्हें आमदनी हो। वास्तव में, खेती से मिलने वाले कच्चे माल पर आधारित कई उद्योगों के उत्पादन में कमी हो गयी और औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि की गति कुछ कम हो गयी। मुद्राबाहुल्य के कारण पड़ने वाले दबावों का सामना करने के लिए मुद्रा-उपलब्धि की वृद्धि की गति को काफी कम किया गया। अर्थ-व्यवस्था में सरकारी और सम्भवतः गैर-सरकारी निवेश के स्तर पिछले वर्ष की अपेक्षा कम थे। लेकिन मूल्यों, विशेषतः अन्न के मूल्यों का स्तर विशेष रूप से ऊंचा हो गया। कृषि पर आधारित वस्तुओं के पहले से कम निर्यात के कारण और अन्न तथा रासायनिक खाद के आयात और ऋण-परिशोधन के सम्बन्ध में, निर्यात से होने वाली आमदनी में से पहले की अपेक्षा अधिक रकमों की अदायगी करने के कारण शोधन-सन्तुलन पर भारी दबाव पड़ा।

2. इस प्रकार जब अल्पकालीन आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक थी तब तत्काल यथासम्भव राहत पहुंचाने के लिए और मौसम सम्बन्धी स्थिति के ठीक होते ही स्थिरता के साथ विकास कार्य फिर से शुरू करने में सहायता देने के लिए विभिन्न नीतिमूलक उपाय किये गये। कृषि-विकास-कार्यक्रम में रासायनिक खाद, सुधरी किस्म के बीज और पानी जैसी कृषि-कार्य के लिए उपयोगी वस्तुओं की सप्लाई में तेजी से वृद्धि करने के साथ ही उन इलाकों में उत्पादन बढ़ाने पर अधिक जोर देने की व्यवस्था है जहां ऐसा करने से अधिक लाभ हो सकता है। विदेशी मुद्रा सम्बन्धी स्थिति के कठिन होने के बावजूद, कृषि के काम आने वाली अत्यावश्यक वस्तुओं के आयात में काफी वृद्धि की गयी। परिवार नियोजन कार्यक्रम में तेजी लायी गयी। मित्र देश और संस्थाएं सहायता का अधिकांश भाग गैर-प्रायोजना सहायता के रूप में देने के लिए सहमत हो गयीं और इसलिए कई उद्योगों के लिए यह व्यवस्था करना सम्भव हो गया कि वे अपने लिए आवश्यक मशीनों के हिस्सों और कच्चे माल का आयात, आवश्यकतानुसार, कर सकें। कई अत्यावश्यक प्रायोजनाओं के लिए विदेशों से धन जुटाने के प्रबन्ध पूरे कर लिये गये जिससे आयोजना के अन्तिम वर्षों में उत्पादन में वृद्धि हो जायगी। नियंत्रणों को, कुछ सीमा तक, सरल बनाया गया और निर्यात-संवर्धन तथा युक्तिसंगत आयात-प्रतिस्थापन (इम्पोर्ट सब्स्टीट्यूशन) को प्रोत्साहन देने के लिए भारतीय रुपये के सम-मूल्य में परिवर्तन किया गया।

उत्पादन और संभरण

3. 1966-67 में, लगभग 760 लाख मेट्रिक टन अन्न पैदा हुआ, जबकि 1965-66 में लगभग 720 लाख मेट्रिक टन और 1964-65 में 890 लाख मेट्रिक टन पैदा हुआ था। खास तौर से, बिहार, उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, राजस्थान और गुजरात के कुछ भागों में, फसलों को बहुत अधिक हानि पहुंची। इससे पहले के वर्ष में, सूखे की स्थिति के कारण, अनाज के स्टाक मे

पहले से ही भारी कमी हो गयी थी । इसलिए, काफी अधिक मात्रा में अनाज के आयात की व्यवस्था करना और देश में पैदा होने वाले अनाज के समुचित वितरण की व्यवस्था करना बहुत जरूरी हो गया । सरकार द्वारा की जाने वाली अनाज की खरीद और उसके वितरण के काम को और भी अधिक तेज कर दिया गया । कुल मिलाकर, सरकारी संस्थाओं के माध्यम से की जाने वाली खुदरा बिक्री का परिमाण, जो 1965 में लगभग 101 लाख मेट्रिक टन था, 1966 में बढ़कर लगभग 141 लाख मेट्रिक टन हो गया । सरकार द्वारा वितरित किये जाने के लिए अनाज का अधिक आयात किया गया, अर्थात् 1964-65 में 67 लाख मेट्रिक टन अनाज के आयात के मुकाबले, 1965-66 में 80 लाख मेट्रिक टन और 1966-67 में 104 लाख मेट्रिक टन अनाज का आयात किया गया । यद्यपि विदेशों से मंगाये गये अतिरिक्त अन्न का अधिकतर भाग, विदेशी सहायता से मंगाया गया, पर निर्यात की हमारी अपनी आमदनी से भी बड़ी मात्रा में अनाज का आयात किया गया । इस प्रकार, यद्यपि 1964-65 में विदेशों से मंगाये गये आयात का मूल्य 266 करोड़ रुपया था पर हमारी अपनी आमदनी में से, भाड़े पर हुए व्यय सहित विदेशी मुद्रा सम्बन्धी परिव्यय 49 करोड़ रुपया था ; 1965-66 में कुल 285 करोड़ रुपये के अनाज का आयात किया गया, जब कि हमारा अपना व्यय 66 करोड़ रुपया था । लगभग 377 करोड़ रुपये के कुल आयात में से 1966-67 में अनाज के आयात पर होने वाला विदेशी मुद्रा सम्बन्धी व्यय (अवमूल्यन से पहले की दर के अनुसार) बढ़कर 114 करोड़ रुपया हो गया ।

4. सूखे के प्रकोप से अत्यधिक प्रभावित क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर अनाज की मुफ्त सप्लाई करने, शारीरिक श्रम की योजनाओं के द्वारा आमदनी के साधन पैदा करने, पीने के पानी की सप्लाई करने, और पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था करने का प्रबंध किया गया ।

5. जहां संभव हुआ, एक से अधिक फसलें उगाकर और दूसरे तरीकों से, अनाज की पैदावार तेजी से बढ़ाने के लिए विशेष उपाय किये गये । रासायनिक खाद, हानिकर जीवों को नष्ट करने वाली दवाओं, बिजली से चलने वाली मोटरों, अच्छी किस्म के बीजों और खेती-बाड़ी की दूसरी जरूरी चीजों की सप्लाई में काफी वृद्धि की गयी । उदाहरणार्थ, 1967-68 में रासायनिक खाद के आयात के लिए लगभग 2700 लाख डालर की रकम निर्धारित की गयी है, जब कि केवल दो वर्ष पहले 47 करोड़ रुपये की (980 लाख डालर की) रकम निर्धारित की गयी थी । यद्यपि खेतीबाड़ी की पैदावार को बढ़ाने की नयी कार्य-प्रणाली के पूरे प्रभावों का पता कई वर्ष बाद ही चल सकता है, तथापि अनेक क्षेत्रों में इसके परिणाम साफ तौर पर दिखाई देने लगे हैं ।

6. सूखे के कारण, न केवल अनाज की फसलों, बल्कि दूसरी वाणिज्यिक फसलों पर भी बुरा असर पड़ा । लगभग सभी मुख्य वाणिज्यिक फसलों अर्थात् गन्ना, कच्ची जूट, तिलहन, कपास और तम्बाकू आदि पर बुरा असर पड़ा । कच्चे जूट का काफी मात्रा में आयात किया गया, लेकिन फिर भी उद्योगों के लिए कच्चे जूट और खेती से मिलने वाले दूसरे कच्चे माल की कुल उपलब्धि, नाकाफी रही । इसके परिणामस्वरूप, सूती कपड़े, जूट की वस्तुएं, चीनी और बनास्पती उद्योगों के उत्पादन में निश्चित रूप से कमी हुई और सूखे की स्थिति के कारण, सूती कपड़े की मांग में भी भारी कमी हुई । भारत के औद्योगिक उत्पादन में, खेती-बाड़ी पर आधारित इन उद्योगों का बहुत बड़ा हाथ है ।

7. हालांकि इस्पात की मांग कम रही, इसके वास्तविक आयात की मात्रा भी कम रही और उसका स्टाक ज्यादा था पर इस्पात का उत्पादन लगभग उतना ही हुआ जितना पिछले वर्ष हुआ था । चूंकि रेलों और इस्पात के कारखानों की मांग में वृद्धि नहीं हुई, इसलिए कोयले, का उत्पादन जितना था, उतना ही रहा । पूंजीगत वस्तुएं बनाने वाले कुछ खास किस्म के उद्योगों,

जैसे ढलाई-गढ़ाई के कारखानों, इस्पाती ढांचे बनाने के उद्योगों, रेल के डिब्बे और सूती कपड़े तैयार करने की मशीनें बनाने वाले उद्योगों के उत्पादन में, निवेश सम्बन्धी मांग का स्तर कम होने के कारण, काफी कमी आयी । कुछ दूसरे उद्योगों में, जैसे बिजली के उपकरणों, टायरों और ट्यूबों आदि का निर्माण करने वाले उद्योगों में, आयात किये गये माल की सुलभता के परिणामस्वरूप, उत्पादन काफी ज्यादा हुआ । रासायनिक खाद, हानिकर जीवों को नष्ट करने वाली दवाओं और पम्प-सेटों आदि जैसा सामान तैयार करने वाले उन उद्योगों के उत्पादन में भी बहुत ज्यादा वृद्धि हुई, जो कृषि की जरूरतों को पूरा करते हैं ।

8. कुल मिलाकर, औद्योगिक उत्पादन में थोड़ी सी ही वृद्धि हुई । अप्रैल से अक्तूबर 1966 के दौरान, औद्योगिक उत्पादन का औसत सूचक-अंक, 1965 की इसी अवधि के सूचक अंक से केवल 2.7 प्रतिशत ज्यादा रहा । इस तथ्य के बावजूद, कि बहुत से उद्योगों, खास कर सूती कपड़े और चीनी जैसी पूंजीगत वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्योगों का काम ढीला रहा, औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में, नवम्बर से सामान्य वृद्धि के साफ लक्षण दिखायी दिये । जनवरी, 1967 को समाप्त हुए तीन महीने की अवधि के औद्योगिक उत्पादन का सूचक अंक, पिछले वर्ष की इसी अवधि के सूचक अंक से 5.2 प्रतिशत अधिक रहा ।

9. उत्पादन पर बाहर से मंगाये जाने वाले कच्चे माल की अधिक उपलब्धि का जो प्रभाव पड़ा, उसे वर्ष के दौरान आंशिक रूप में ही महसूस किया गया, क्योंकि आयात को उदार बनाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत, आयात-लाइसेंस, वर्ष की दूसरी छमाही में ही दिये गये । औद्योगिक उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रम का पूरा प्रभाव साफ तौर से 1967-68 में ही दिखायी देगा । अनुमान है कि देशी इस्पात के मूल्यों और उनके वितरण पर से नियंत्रण हटा दिये जाने से, आगामी वर्ष में औद्योगिक उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ेगा । उत्पादन में विभिन्नता लाने के सम्बन्ध में जो पाबन्दियां लगी हुई हैं उन्हें ढीला करने और वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्योगों में जो प्रतियोगिता उत्पन्न हो रही है उसके कारण कारगर ढंग से अधिक मात्रा में कच्चे माल का इस्तेमाल करना आसान हो जायगा ।

मूल्य

10. जैसा कि पहले बताया जा चुका है, राशन या उचित मूल्य की दुकानों से बांटे जाने वाले अन्न की मात्रा में काफी अधिक वृद्धि हुई ; और इसके अलावा सूखाग्रस्त क्षेत्रों में काफी मात्रा में अनाज मुफ्त भी बांटा गया । लेकिन फिर भी, कुल कमी को देखते हुए अन्न और दूसरे कृषि पदार्थों के मूल्यों में काफी वृद्धि हुई । इसका परिणाम यह हुआ कि कच्चे माल और मजदूरी के बढ़े हुए खर्च के कारण निर्मित वस्तुओं के मूल्यों में भी वृद्धि हो गयी । अवमूल्यन के बाद विदेशों से मंगाये जाने वाले माल की बढ़ी हुई लागत का भी मूल्यों के स्तर पर कुछ प्रभाव पड़ा, यद्यपि कई मामलों में ये बढ़े हुए खर्च उस लाभ से पूरे कर लिये गये जो पहले निर्माताओं और व्यापारियों को मिलता था । आलोच्य वर्ष में थोक मूल्यों के सूचक अंक में 16.8 प्रतिशत की जो वृद्धि हुई थी वह चिन्तनीय थी, क्योंकि इससे पहले के दो वर्षों में पहले ही 28 प्रतिशत वृद्धि हो चुकी थी ।

11. इस चिन्तनीय स्थिति के बावजूद और उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, इस बात को स्वीकार किया गया कि उपज बढ़ाने के उद्देश्य से किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए कृषि पदार्थों के मूल्यों का लाभकारी होना आवश्यक है ; और सचमुच इस वर्ष कई कृषि-पदार्थों के वसूली के और सहायतार्थ मूल्य (सप्पोर्ट प्राइसेज) या अधिकतम मूल्य बढ़ा दिये गये । इसी प्रकार कुछ निर्मित

वस्तुओं के मूल्यों में खास तौर पर उन वस्तुओं के मूल्यों में जो बिना किसी कारण कई वर्षों तक बहुत नीचे स्तर पर निर्धारित किये गये थे, निवेश और उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से वृद्धि की गयी। लेकिन इस सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि सापेक्ष मूल्यों (रिलेटिव प्राइसेज) में होने वाले परिवर्तन उत्पादन बढ़ाने के लिए तभी लाभदायक हो सकते हैं जब मूल्यों में, कुल मिलाकर, स्थिरता रहे।

शोधन-संतुलन

12. आलोच्य वर्ष में शोधन-संतुलन पर भारी दबाव पड़ने का एक बड़ा कारण कृषि संबंधी स्थिति का प्रतिकूल होना था। यदि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि से निकाली गयी रकमों को हिसाब में न लिया जाय, तो इस वर्ष विदेशी मुद्रा प्रारक्षित निधि में, बहुत तेजी से कमी हुई। इस प्रकार यद्यपि आलोच्य वर्ष में विदेशी मुद्रा प्रारक्षित निधि में 1.20 करोड़ डालर की थोड़ी सी वृद्धि हुई, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा निधि के प्रति हमारी देनदारी 13 करोड़ डालर और बढ़ गयी। निर्यात से होने वाली आमदनी में से अनाज के आयात पी० एल० 480 के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली वस्तुओं के भाड़े और कच्चे जूट के आयात के लिए पहले की अपेक्षा बहुत बड़ी रकम अदा की गयी। ऋण परिशोधन सम्बन्धी प्रभार में भी पिछले वर्ष की अपेक्षा बहुत अधिक वृद्धि हुई। 1966-67 में यह रकम 37.40 करोड़ डालर थी, जबकि 1965-66 में यह 31.50 करोड़ डालर थी।

13. कच्चे जूट की कमी होने के कारण जूट से बनी वस्तुओं के निर्यात में बाधा पड़ी और सूती वस्त्रों के निर्यात में होने वाली कमी भी अंशतः रुई की कमी के कारण भारतीय रुई के मूल्यों में वृद्धि होने के कारण हुई। वनस्पति तेलों का निर्यात नहीं के बराबर हुआ और प्रतिकूल मौसम का तम्बाकू के निर्यात पर भी असर पड़ा। निर्यात से होने वाली आमदनी में कमी का एक कारण यह भी है कि भारत से निर्यात की जाने वाली मुख्य वस्तुओं, जैसे चाय की मांग संसार की मंडियों में कुछ कम हो गयी। रुपये के सम-मूल्य में परिवर्तन हो जाने के परिणामस्वरूप मछली जैसी उन कुछ वस्तुओं के निर्यात में कुछ वृद्धि हुई जिनकी सप्लाई में कमी नहीं हुई थी; और साथ ही खानों से लोहा निकालने और परिवहन सम्बन्धी सुविधाओं में सुधार हो जाने के कारण लोहे का निर्यात बढ़ गया। इस्पात और कई प्रकार की निर्मित वस्तुओं के निर्यात में भी वृद्धि हुई। लेकिन कुल मिला कर निर्यात से विदेशी मुद्रा के रूप में हुई आमदनी पिछले वर्ष की अपेक्षा बहुत कम रही।

14. आलोच्य वर्ष में अनाज, रासायनिक खाद और कृषि सम्बन्धी कुछ खास-खास वस्तुओं को छोड़ कर आयात में काफी कमी हुई। इसी प्रकार, लोहे और इस्पात, मशीनों और अलौह धातुओं के आयात में क्रमशः 46 प्रतिशत, 20 प्रतिशत और 61 प्रतिशत की कमी हुई। यह कमी आयात पर कड़े प्रतिबन्धों के कारण जो 1965-66 में लगाने पड़े थे, और मुद्रा बाहुल्य की चिन्ताजनक स्थिति के कारण विकास की गति को धीमा करने के कारण हुई।

15. आलोच्य वर्ष में भारत सहायता संघ (कंसॉर्शियम) के देशों ने 675 करोड़ रुपये (90 करोड़ डालर) की गैर-प्रायोजना सहायता देने का वचन दिया था जिसमें से अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ ने 161.25 करोड़ रुपये (21.50 करोड़ डालर) और संयुक्त राज्य अमेरिका ने 286.50 करोड़ रुपये (38.20 करोड़ डालर) देने का वचन दिया था। इस गैर-प्रायोजना सहायता में अपने अंशदान के रूप में ब्रिटेन ने 2.3 करोड़ डालर की ऋण सम्बन्धी देनदारी के लिए और भी अधिक अनुकूल शर्तों पर पुनर्वित्त की व्यवस्था की, और कनाडा ने 1 करोड़ डालर की अदायगियों की वह रकम छोड़ दी, जो पहले के गेहूं सम्बन्धी ऋणों के सम्बन्ध में अदा की जानी थी। जापान ने 26 लाख डालर के ऋणों के लिए और आस्ट्रिया ने 9 लाख डालर के ऋणों के लिए पुनर्वित्त की व्यवस्था की। आलोच्य वर्ष में विदेशी सहायता की एक उल्लेखनीय बात यह रही कि भारत को अन्न सहायता

देने के काम में बहुत से देशों और संस्थाओं ने भाग लिया और इस प्रकार मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा हमारी अनाज सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई वर्षों से जो सहायता दी जा रही है उसकी अनुपूर्ति की।

बजट और मुद्रा सम्बन्धी प्रवृत्तियां

16. आलोच्य वर्ष में बजट संबंधी नीति का मुख्य उद्देश्य मुद्राबाहुल्यकारी प्रवृत्तियों का मुकाबला करना था। 31 मार्च, 1967 को समाप्त 12 महीनों में केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों ने ऋण के रूप में रिजर्व बैंक से कुल मिलाकर 196 करोड़ रुपया लिया। सहायता कार्यों पर अधिक खर्च होने, मंहगाई भत्तों में वृद्धि होने और उत्पादन में हुई कमी का विभिन्न करों से होने वाली प्राप्तियों पर असर पड़ने के बावजूद यह रकम पिछले वर्ष लिये गये 404 करोड़ रुपये के ऋणों की रकम की अपेक्षा काफी कम थी। अकेले केन्द्रीय सरकार ने ही रिजर्व बैंक से 333 करोड़ रुपये का ऋण लिया, लेकिन इस ऋण का बहुत बड़ा भाग, रिजर्व बैंक के प्रति राज्य सरकारों की देनदारी कम करने के लिए खर्च किया गया।

17. सरकार का रिजर्व बैंक के ऋण पर कम निर्भर रहना, सरकारी खर्च के मुद्राबाहुल्यकारी प्रभाव से बचने के उद्देश्य को पूरा करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। लेकिन केन्द्र का बजट सम्बन्धी घाटा, बजट तैयार करते समय के अनुमानित घाटे से काफी अधिक था; और यद्यपि पिछले वर्ष की आर्थिक स्थिति को देखते हुए कुछ हद तक घाटे की वित्त व्यवस्था करना अनिवार्य था, लेकिन फिर भी यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों दोनों की बजट सम्बन्धी स्थिति को सुधारने के लिए बहुत ही जोरदार प्रयत्नों की आवश्यकता है।

18. राज्य सरकारों ने रिजर्व बैंक से जमा से अधिक 108 करोड़ रुपये की जो रकम निकाली थी वह 1966-67 में केन्द्रीय सरकार द्वारा चुका दी गयी; और भविष्य में जमा से अधिक रकम का निकाला जाना रोकने के लिए राज्य सरकारों से विचार-विमर्श भी किया गया। रिजर्व बैंक ने अब एक नयी कार्यविधि अपनायी है जिसके अनुसार यद्यपि राज्य सरकारों को उनकी अर्थोपाय स्थिति के बारे में अधिक स्वतन्त्रता दी गयी है, लेकिन अब वे अनधिकृत रूप से किसी भी अवधि के लिए जमा से अधिक रकम नहीं निकाल सकेंगी।

19. रेलों सहित सरकारी क्षेत्र के प्रतिष्ठानों से होने वाली आमदनी विकास-कार्यों के खर्च के लिए धन जुटाने का महत्वपूर्ण स्रोत है। इन साधनों से 1966-67 में अनुमान से कम रकम प्राप्त हुई। यद्यपि इन से प्राप्त होने वाली रकमों में हुई कमी अधिकतर कम उत्पादन होने के कारण हुई, लेकिन अधिक उत्पादन, कार्यकुशलता और अलाभकारी मूल्यों में परिवर्तन द्वारा इन प्रतिष्ठानों की आमदनी में वृद्धि की स्पष्ट रूप से आवश्यकता है।

20. मुद्रा सम्बन्धी नीति का उद्देश्य मूल्यों के स्तर में होने वाली अनुचित वृद्धि को खास तौर पर सट्टेबाजी के विचार से वस्तुओं को जमा करने के परिणामस्वरूप होने वाली वृद्धि को भी रोकना है। 1966-67 में मुद्रा उपलब्धि के विस्तार के अनुपात में 7.1 प्रतिशत की कमी हुई, जबकि 1965-66 में 11.1 प्रतिशत की कमी हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि मुद्रा उपलब्धि में जो वृद्धि हुई, वह आलोच्य वर्ष में उत्पादन में हुई वृद्धि से अधिक थी, लेकिन इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था करना जरूरी था कि एक ओर तो मुद्रा सम्बन्धी अनुशासन को उचित हद तक बनाये रखा जाय, लेकिन दूसरी ओर ऋण उपलब्धि की भारी कमी से उत्पादन में किसी प्रकार की रुकावट पैदा न हो। अधिक कामकाज के मौसम

में जो अधिक ऋण दिये गये उनका 80 प्रतिशत भाग औद्योगिक ऋणकर्त्ताओं को और आयात तथा निर्यात के एवज में दिया जाना जरूरी था। आय और उसके परिणामस्वरूप जमा रकमों में होने वाली वृद्धि की गति पूर्वानुमान की अपेक्षा धीमी थी, वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिये जाने वाले अग्रिमों की रकमों में भी उतनी वृद्धि नहीं हुई जिस का पहले अनुमान लगाया गया था, यद्यपि यह रकम 1965–66 की रकम से काफी अधिक थी। रिजर्व बैंक से निर्धारित सीमा से अधिक लिये गये ऋणों के सम्बन्ध में ब्याज की दण्डात्मक दरें लागू कर के, रिजर्व बैंक से ऋण लेने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया गया। खास-खास वस्तुओं को जमा करने की प्रवृत्ति को रोकने के लिये चुनी हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में ऋण देने पर नियंत्रण भी लगाये गये। आलोच्य वर्ष में ब्याज की दरों के ढांचे में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ।

मूल्यांकन

21. भारत की अर्थ-व्यवस्था के लिए पिछले दो वर्षों की अवधि बड़ी कठिन रही है। मूलतः ये कठिनाइयां दो दैवी विपत्तियों और दो युद्धों के कारण पैदा हुई हैं। इस अवधि में अर्थव्यवस्था का संचालन विशेष रूप से कठिन रहा है। एक ओर तो यह जरूरी रहा है कि मौजूदा कमियों से निबटा जाय और मुद्राबाहुल्य को रोका जाय और दूसरी ओर हमारे हाल के अनुभव से इस आवश्यकता को बल मिला है कि कई महत्वपूर्ण मोर्चों पर उपचारात्मक कार्रवाई की जाय और इस कार्रवाई को लगातार कई वर्षों तक जारी रखा और मजबूत बनाया जाय। उदाहरण के लिए, परिवार नियोजन, कृषि के क्षेत्र में प्रति एकड़ उपज में वृद्धि, निर्यात संवर्धन, सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों में प्रबन्ध और उत्पादकता सम्बन्धी कुशलता में वृद्धि, सरकारी खर्च में देरी और बरबादी को दूर करना और एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना, जिसमें भारत के उद्योगों को प्रतियोगिता का क्रमशः अधिक से अधिक मुकाबला करना पड़े, आदि ऐसे कार्य हैं जिन पर आने वाले कई वर्षों तक ध्यान देना पड़ेगा। देश में विकास की गति को भी कई आयोजनाओं की अवधियों में और कई दिशाओं में तेज करना पड़ेगा। किन्तु देश की वर्तमान स्थिति काफी जटिल है और इसे बड़े ध्यान से संभालने की जरूरत है।

22. इस समय देश के सामने जो समस्या है वह मुद्रा-बाहुल्य को दूर करने की और अन्न के समुचित वितरण के प्रबन्धों को बनाये रखने और उन्हें मजबूत करने की है। निकट भविष्य में, सरकारी वितरण-व्यवस्था के लिए अन्न की उपलब्धि में वृद्धि करने के लिए, अतिरिक्त आयात के प्रबन्ध के साथ-साथ, गल्ला वसूली के लिए जोरदार प्रयत्न करने की आवश्यकता है। पर, चूंकि उपलब्धि (सप्लाई) बहुत सीमित है, इसलिए हो सकता है कि भरसक प्रयत्न करने पर भी केवल इन्हीं उपायों से मूल्य स्थिरता के वातावरण का पुनर्निर्माण न हो सके। जब वस्तुओं की सप्लाई केवल थोड़ी सी कम होती है, तब मूल्य-स्थिरता का वातावरण बनाये रखने के लिए, मूल्य-नियंत्रण और वितरण सम्बन्धी विनियमन काफी होते हैं, चाहे मांग का दबाव अधिक ही क्यों न हो। लेकिन मौजूदा हालत में, स्पष्ट रूप से इस नीति की अपनी सीमाएं हैं और इसलिए सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र के खर्च पर नियंत्रण रख कर मांग को कम करते रहने की नीति के अलावा और कोई चारा नहीं है।

23. यद्यपि, निस्सन्देह इस बात की आवश्यकता है कि सरकार के उस खर्च, जिससे विकास-कार्य में सहायता मिलती है, और उस खर्च में जिससे ऐसा नहीं होता (सिवाय बिलकुल अप्रत्यक्ष रूप से), भेद किया जाय, फिर भी यह बात महसूस की जानी चाहिए कि मुद्राबाहुल्यकारी प्रवृत्ति को, विकास से भिन्न कार्यों के खर्च को कम करने के निश्चित प्रयत्नों और विकास सम्बन्धी खर्च में किफायत करने, यहां तक कि इस खर्च को यथासम्भव स्थगित करने की तत्परता दिखाये बिना समाप्त नहीं किया जा सकता। पिछले वर्ष विकास से भिन्न कार्यों सम्बन्धी सरकारी व्यय में जो भारी वृद्धि हुई

वह रुपये के अवमूल्यन के बाद अन्न के ऊंचे मूल्यों को कम करने के लिए राजसहायता देने के निश्चय के कारण हुई । यह एक ऐसा कदम था जिसका उद्देश्य अवमूल्यन के तुरन्त बाद की अवधि में राहत पहुंचाना था और इसे एक स्थायी सहारे के रूप में नहीं, बल्कि आघात सहने वाले कदम के रूप में देखना चाहिए । जब परिस्थितियां अनुमति दें, तो इस राजसहायता को धीरे-धीरे समाप्त करने से सरकार के विकास से भिन्न व्यय में कमी करने में काफी सहायता मिलेगी और विकास कार्यों के लिए साधन उपलब्ध हो सकेंगे । ये बातें, बजट के जरिये प्रदान की गयी अन्य राजसहायताओं और राहतों पर भी लागू होती हैं ।

24. जब पिछले कुछ समय से कीमतों में वृद्धि हो रही हो और जब उन आवश्यक चीजों पर, जिनकी सप्लाई कम हो, अनिवार्य रूप से नियंत्रण लागू हों, तब समय समय पर मूल्यों और वेतनों में मेल बैठाने के असमंजस से बचना मुश्किल हो जाता है । उत्पादन की गति बनाये रखने और उसमें वृद्धि करने के प्रयोजन से, लागत और मूल्यों में पहले ही हो चुकी वृद्धियों के लिये कुछ मुआवजा देना अपरिहार्य और वास्तव में आवश्यक हो सकता है । इसके साथ-साथ, यदि मुद्राबाहुल्यकारी वातावरण और मुद्राबाहुल्य की प्रक्रिया को जल्दी से जल्दी समाप्त करना है, तो सम्पूर्ण बजट और मुद्रा सम्बन्धी गैर-मुद्राबाहुल्यकारी नीतियों के होते हुए भी, वेतन-लागत-मूल्य के चक्कर पर कुछ नियंत्रण रखना ही पड़ेगा ।

25. इस प्रकार मेल बैठाने की आवश्यकता के कारण यह बात और भी महत्वपूर्ण हो गयी है कि कुल मिला कर राजस्व सम्बन्धी नियंत्रणों को कायम रखा जाय । इसके साथ-साथ ऋण और मुद्रा सम्बन्धी नीति के बारे में भी वैसे ही अनुशासन लागू किये जाने चाहिएं । इस बात की स्पष्ट आवश्यकता है कि ब्याज की दरों को पर्याप्त रूप से ऊंचा रखा जाय । साथ ही इस बात से भी बचना होगा कि उत्पादन-वृद्धि की तुलना में गैर-सरकारी क्षेत्र को बैंकों से मिलने वाले ऋण में बहुत अधिक वृद्धि न हो जाय । इसके अलावा सट्टेबाजी के प्रयोजन से जमाखोरी करने के लिए बैंकों द्वारा पैसा दिया जाना रोकने के लिए विशिष्ट ऋण-नियंत्रणों का जारी रखा जाना जरूरी है । बैंक ऋण में वृद्धि की उचित सीमा निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि इससे पहले जो असन्तुलन पैदा हो गये हैं उन्हें समाप्त किया जाना जरूरी है, भले ही इसमें कुछ और समय क्यों न लग जाय । इस सन्दर्भ में, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ऋण-विस्तार की उचित सीमा का एक अंश, जिसकी आवश्यकता उद्योग और कृषि के क्षेत्र में उत्पादन के उच्च स्तर को बनाये रखने के लिए पड़ सकती है, घाटे की वित्त व्यवस्था में खप जाता है ।

26. साथ ही यह बात मान ली जानी चाहिए कि औद्योगिक क्रियाकलाप में सामान्य रूप से शिथिलता आ गयी है और कुछ क्षेत्रों में क्षमता का पूरा पूरा उपयोग नहीं किया जा रहा है और श्रमिकों में बेरोजगारी है । जब कि एक ओर कृषि से प्राप्त होने वाले कच्चे माल की कमी से कुछ उद्योगों में उत्पादन-लागत में वृद्धि हुई है, वहां दूसरी ओर सूखे के परिणामस्वरूप मांग में भी कमी हुई है । वास्तविक आमदनियों में गतिहीनता आ जाने से, अर्थ-व्यवस्था में बचतों के स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और इसका पता इस बात से चलता है कि सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों में बैंकों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गयी है । अर्थ-व्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में सुस्ती की प्रवृत्तियों की मौजूदगी से, मांग को प्रोत्साहन देने के लिए खास-खास प्रयत्न करने की आवश्यकता प्रतीत होती है । लेकिन अन्न की भारी कमी की स्थिति में ऋण-विस्तार के द्वारा ऐसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि इससे मुद्रा-बाहुल्य की स्थिति पैदा हो जाती है । उन विशिष्ट उद्योगों के लिए, जिन की ओर ध्यान दिया जाना जरूरी है, दिये जाने वाले खास-खास प्रोत्साहनों पर बजट सम्बन्धी साधनों और उन बचतों की कुल सीमाओं को ध्यान में रख कर विचार करना पड़ेगा, जिन्हें गैर-सरकारी

उद्योग स्वयं जुटा सकते हैं । अनिश्चय की स्थिति का भी निवेश के वातावरण पर असर पड़ता है । और खास-खास उपायों को सफलता से लागू करने की संभावना बहुत हद तक इस बात पर निर्भर होती है कि निकट भविष्य में कितना कृषि-उत्पादन और आमदनी होने का अनुमान है ।

27. जब निवेश की (और विशिष्ट वस्तुओं के उपयोग की भी) मांग देश के अन्दर कम हो और खास-खास प्रोत्साहन देने की नीति की भी कुछ सीमाएं हों, तब उत्पादन-स्तर को बनाये रखने के यही तरीके हो सकते हैं कि निर्यात के लिए मंडियां ढूंढी जायें और उत्पादन में विविधता लायी जाय । आयात नीति का उद्देश्य भी, कुछ हद तक, यही होना चाहिए कि अदायगी सम्बन्धी स्थिति के कठिन होने के बावजूद, विशिष्ट वस्तुओं की कमी को दूर किया जाय । इस सम्बन्ध में बहुत अधिक जटिल और कठिन स्थिति का सामना करने के लिए, उन प्राथमिकताओं में, जो दीर्घकालीन दृष्टि से, उचित हो सकती हैं, अल्पकालीन दृष्टि से फेरबदल करना पड़ सकता है । औद्योगिक नीति---और प्रबन्ध सम्बन्धी प्रतिभा---को भी, उत्पादन में विविधता लाने की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना पड़ेगा । लेकिन यह बात माननी पड़ेगी कि इन सब प्रयत्नों के बावजूद, हो सकता है कि आने वाले कुछ समय में कम से कम कुछ उद्योगों में पूरी क्षमता का उपयोग न हो सके ।

28. कुछ और आगे देखने से पता चलेगा कि इस बात की सुनिश्चित व्यवस्था करना जरूरी है कि विकास कार्यों को जितनी जल्दी हो सके फिर से उसी रफ्तार से चलाया जाय । फिलहाल यह जरूरी है कि सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों में निवेश कुछ खास-खास उद्योगों में किया जाय, लेकिन यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि मौसम के अपेक्षाकृत अधिक सामान्य हो जाने और खेती की पैदावार बढ़ाये जाने के लिये किये जा रहे भारी प्रयत्नों के परिणामस्वरूप कृषि-उत्पादन के स्तर के बढ़ने ही मांग में भी वृद्धि हो सकती है । चौथी आयोजना के बाद के वर्षों के लिए औद्योगिक उत्पादन के स्तरों का आयोजन, उस समय तक बढ़ जाने वाले कृषि उत्पादन के आधार पर किया जाना चाहिए और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि मौजूदा कृषि उत्पादन पर आधारित अनुचित निराशा के परिणामस्वरूप उन वर्षों में विकास-कार्य में बाधा न पड़े । सरकारी क्षेत्र, गैर-सरकारी उद्योगों और वित्तीय संस्थाओं, इन सब को फिलहाल, नयी प्रायोजनाएं चालू करने के सम्बन्ध में काफी संयम से काम लेना होगा और लगातार प्रयत्न करके इस बात के लिए तैयार रहना पड़ेगा कि जब परिस्थितियां आज की अपेक्षा अधिक अनुकूल हो जायें तो वे ध्यानपूर्वक चुने हुए क्षेत्रों में अधिक निवेश कर सकें ।

29. इस सन्दर्भ में, रुपये के सम-मूल्य में हुए परिवर्तन से प्राप्त अवसरों का लाभ उठाने के लिए, निर्यात उद्योगों में उचित मात्रा में निवेश करने का बहुत अधिक महत्व है । यदि और किसी कारण से नहीं, तो केवल, ऋण चुकाने के बढ़ते हुए बोझ को देखते हुए अपने शोधन-सन्तुलन में फिर से काफी हद तक लचकीलापन लाये जाने के लिए ही निर्यात में तेजी से वृद्धि करना जरूरी है । हम अपने ऋण-परिशोध सम्बन्धी व्यय की और कुछ किस्मों के आयात के खर्च की पूर्ति, केवल निर्यात से होने वाली आमदनी या नकदी अथवा इस जैसे रूप में प्राप्त होने वाली विदेशी सहायता से ही कर सकते हैं । यद्यपि निर्यात पर ज्यादातर कृषि उत्पादन का प्रभाव पड़ता है, लेकिन निर्यात के लिए खनिज उत्पादन और निर्मित वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए भी प्रयत्न करना जरूरी है ; अन्ततः निर्यात से होने वाली आमदनी में सब से अधिक वृद्धि इन्हीं क्षेत्रों से होने की संभावना है । निर्यात के लिए---जैसे कि खनिज लोह के मामले में---न केवल विशेष रूप से अतिरिक्त क्षमता स्थापित करने की आवश्यकता है, बल्कि सामान्य रूप से वस्तु-निर्माण उद्योग का इस प्रकार विस्तार करने और आधुनिकीकरण करने की भी आवश्यकता है जिससे लागत कम हो जाय और निर्यात उद्योग में दीर्घकालीन निवेश करना लाभदायक हो जाय । सारांश यह कि विकास-कार्यों को फिर से सामान्य रूप से प्रारम्भ करने की तैयारी करते समय निर्यात-संवर्धन की आवश्यकताओं को सब से आगे रखना पड़ेगा ।